# मन्त्र-विभूति

जहाँ तक पता चला है श्री श्री माँ का गुरुकरण व दीक्षा, लोकरीति के अनुसार नहीं हुई। शास्त्र आदि के अध्ययन से उनको दिव्य ज्ञान नहीं हुआ है। बहुतों की धारणा है कि वह भागवती ऐश्वर्य लेकर वर्तमान युग के प्राणियों के कल्याण के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हैं।

बचपन में माँ के शरीर में नाना प्रकार के अद्भुत भावों का विकास होता था। पर वह साधारण लोगों को दृष्टिगत नहीं होता था। वे बचपन में खेल-कूद से इतनी उदास और विरक्त थीं कि लोग उन्हें बेवकूफ व गूँगी लड़की समझते थे। यहाँ तक कि श्री श्री माँ के मातापिता भी उनके भविष्य के विषय में चिन्तित रहते थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि अपनी स्थिति तथा पूर्वक्षण में क्या बात कही थी और कौन काम किया था इसका भी माँ को ख्याल नहीं रहता था।

जैसा कि सुना गया है कि वे चलते-चलते पेड़ पौधों के साथ या अशरीरी और अदृश्य मूर्तियों के साथ बातें करती थीं तथा अनेक प्रकार के भावों का प्रकाशन करती थीं। कभी विमना हो चुप हो जाती थीं।

उनके शरीर में १७-१८ वर्ष की अवस्था से लेकर २४-२५ वर्ष तक नाना प्रकार के अलौकिक भावों का विशेष प्रकाश होना आरम्भ हुआ। कभी-कभी देवी-देवताओं के नाम का उच्चारण

करते-करते विवश होकर गिर पड़ती थीं, कीर्तन आदि के प्रभाव से भी अचेतन हो जाती थीं, भगवत् प्रसंग सुन अथवा देवमन्दिर के दर्शन से उनका शरीर व्यावहारिक जगत् के कार्य के योग्य नहीं रहता था। श्री श्री माँ प्रायः १८ वर्ष की उमर में बाजितपुर (जिला मैमनसिंह) जाकर पाँच-छः वर्ष रहीं। इस समय के अन्तिम भाग में उनके शरीर से मन्त्रादि स्फुरित हुए और देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उज्ज्वल हो प्रकाशित हुईं, समस्त देह में यौगिक क्रियायें भी होने लगीं। इस प्रकार दैवी प्रभाव के प्रकाशन के साथ वाक्शक्ति बन्द हो गयी और इस तरह मौनावस्था में १ साल ३ मास बाजितपुर में, तथा १ साल ९ मास ढाका में बीते। अन्त में लोक-दृष्टि से एक निर्मल शान्ति या विराट् भाव का प्रकाश हुआ। तब देखा गया कि उनके शरीर में बाहरी भीतरी क्रियायें बन्द हो गयी हैं और वे अपने भाव में प्रतिष्ठित हो गयी हैं। इस समय का एक चित्र इस पुस्तक में यहाँ दिया गया है।

उक्त प्रकार की अवस्थाओं के प्रकाश के समय पिता जी प्रायः चिंतित हो जाते और सोचते कि इन सबका परिणाम क्या होगा।

किन्तु अनेक प्रकार की लोकचर्चाओं के होते हुए भी पिताजी ने माता जी के किसी कार्य में बाधा न दी। उनके शरीर में देवता का प्रवेश हुआ है ऐसा सोच कर पिता जी ने अनेक बार साधुओं और ओझाओं द्वारा प्रतिकार की चेष्टा की। उससे कोई लाभ नहीं हुआ वरन् वे लोग ही माँ के निकट जा भय और विस्मय से विह्वल हो गये और माँ की कृपा पा करके ही फिर से स्वस्थ हुए।



उस समय श्री श्री माता जी के शरीर में प्रायः साढ़े पाँच महीनों तक अनेक देवी-देवताओं का आविर्भाव हुआ था; उन्होंने कितने सजीव देव-देवी की मूर्तियों के दर्शन किये थे उसका हिसाब नहीं है। वे उन सबकी पूजा करती थीं, पूजा के पश्चात् वे फिर उनके शरीर में विलीन हो जाते ! वाहन आदि के साथ एक देवता की पूजा समाप्त होने पर अन्य देवता का आगमन होता था। पूजा और आरती के समय माँ अनुभव करती थीं कि वे स्वयम् ही देवता, पूजक, तन्त्रधार, मन्त्र तथा पूजा की सामग्री फूल नैवेद्य आदि हैं।

उपर्युक्त पूजा में किसी प्रकार का बाह्यिक उपचार नहीं था तथा वे अपनी इच्छा से ही इन क्रियाओं को नहीं करती थीं। एकान्त में बैठते ही स्वाभाविक रूप से पूजा आदि की यथाविधि दैहिक और मानसिक क्रियायें शरीर के ऊपर स्वतः ही होने लगती थीं। पीछे कर्मकाण्डी लोगों से मालूम हुआ कि कुण्डल, यन्त्र, आदि के निर्माण से लेकर मंत्र, योग, यज्ञ आदि सम्पूर्ण अनुष्ठान शास्त्रीय विधि से सम्पन्न होते थे। इस विषय में यदि माँ से कोई प्रश्न करता तो माँ कहतीं "मुझसे मत पूछो, समय आने पर सब कुछ जान लोगे।"

२८, चैत्र बँगला संवत् १३३० (सन् १९२३ ई०) को माँ ने ढाका में पदार्पण किया और तीन-चार दिन बाद ही स्थानीय शाहबाग में जाकर रहने लगीं। क्रमशः भक्त-समागम होने लगा। १९३५ ई० में पूर्वोक्त अलौकिक पूजा के विषय में सुनकर कुछ भक्तजनों ने माँ से काली-पूजा करने का अनुरोध किया। माँ ने कहा, "मैं तुम लोगों के शास्त्रीय अनुष्ठान की बात तो जानती

नहीं हूँ, अच्छा होगा कि पुरोहित से पूजा करवायी जाय।" बाद में पिताजी की इच्छा से माँ पूजा करने को तैयार हुईं।

जिनकी पूजा करके सब आनन्द पाते हैं वही यदि अपने भक्तों को सिखाने के लिए स्वयम् पूजा करने को प्रस्तुत हों तो उस पूजा की महिमा कितनी अपूर्व होगी यह अकथनीय है। श्री श्री माँ पूजा करेंगी तो वह कैसी होगी इस विषय में कल्पना मात्र से भक्तजनों के हृदय में उत्सुकता और आनन्द का बोध होता था।

यथासमय मूर्ति आयी। पूजा के समय माँ आसन पर बैठ कर कुछ क्षणों के लिये भूमि के ऊपर चुपचाप पड़ी रहीं। बाद में भाव विभोर होकर यंत्रवत् मंत्रादि का उच्चारण करते-करते दाहिने और बायें आथ से अपने सिर पर ही फूल और चन्दन देने लगीं, कभी-कभी काली मूर्ति के ऊपर भी चढ़ा देती थीं। इस प्रकार पूजा सम्पन्न हो गयी।

बलि की व्यवस्था थी। बकरा नहला कर माँ के पास लाया गया, माँ उसे अपनी गोद में लेकर रोते-रोते उसके शरीर पर हाथ फेरने लगीं। फिर उनके अंगप्रत्यंग में मन्त्र पाठ कर उसके कान में कुछ मन्त्र जप किया।

खड्ग की पूजा करते समय उन्होंने भूमि पर पड़कर अपनी गर्दन के ऊपर उसे रखा। उस समय बकरे के समान तीन आवाजें उनके मुख से बाहर हुईं। उसके बाद बकरे को बलि के लिये ले जाते समय देखा गया कि वह न तो चिल्लाया और न छटपटाया ही। बलि के बाद उसकी देह में से रक्त भी नहीं गिरा। बड़ी मुश्किल से होम के लिए एक बूँद संग्रह किया गया। उस समय



श्री श्री माँ की असाधारण सुन्दर मूर्ति ने सब लोगों की दृष्टि आकर्षित की और क्रियाकर्म के आरम्भ से अन्त तक एक अपूर्व एकरसता देखने में आयी।

१९२६ ई० में भी काली-पूजा के लिए माँ से प्रार्थना की। इसी बीच में एक दिन माँ किसी एक भक्त के घर गाड़ी में बैठ कर जा रही थीं। माँ सहसा अपना बायाँ हाथ ऊपर उठा कर तनिक मुस्करा कर चुप हो गयीं। पिताजी के पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया। बाद में जब वह भोग के लिए बैठीं तो फिर पहले की तरह माँ ने अस्वाभाविक भाव से हाथ उठाया। इस विषय में माँ ने बाद में बताया कि जब वे रास्ते से जा रही थीं तब १२० अथवा १३० गज दूर मैदान के बीच में जमीन से १८ हाथ ऊँची एक सजीव काली मूर्ति माँ को देख उनकी गोद में आने के लिए मानो हाथ बढ़ाये थीं। फिर भोग के समय वही काली मूर्ति छोटी सी लड़की के रूप में वहीं आ खड़ी हुई थीं। इसीलिये दोनों जगह माँ का बायाँ हाथ ऊपर उठ गया था।

कालीपूजा के एक दिन पहले शाहबाग में फिर भक्तों ने पूजा के लिए विशेष अनुरोध किया। माँ ने पिताजी से कहा, 'जब इन लोगों का इतना ही आग्रह है तो तुम भी तो पूजा कर सकते हो।' पिताजी ने यह सुनकर सबसे कहा, "पूजा की बात जब तुम्हारी माँ के मुख से (एक बार) निकली है तो पूजा होगी। तुम लोग आयोजन करो।' काली-मूर्ति के नाप की बात उठते ही पिताजी को माँ का गाड़ी में और भोग के समय हाथ उठाना स्मरण हो आया। उस समय जितनी ऊँचाई तक हाथ उठा था उतनी ऊँची कालीमूर्ति बनवायी जाय, ऐसा तय हुआ। माँ उस समय

अचेतनसी जमीन पर पड़ी थीं। अन्दाज से एक नाप ले लिया गया। उस समय रात के ग्यारह बजे थे, एक दिन में इस नाप की मूर्ति कहाँ से तथा कैसे तैयार हो, यही सोच-विचार करते हुए श्रीयुत सुरेन्द्रलाल वंद्योपाध्याय शाहबाग से शहर आये। शहर में एक दूकान पर देखा कि ठीक इसी नाप की एक मूर्ति है। उस कारीगर ने १२ मूर्तियाँ बनाई थीं ११ तो आर्डर की थीं और उसने अपनी इच्छा से बनायी थी। वही बची थी। यथासमय वह मूर्ति लायी गयी। पहले की तरह ही माँ ने पूजा का सम्पादन किया। उस समय माँ के अपूर्व देवी भाव के दर्शन हुए। पूजा के कुछ देर बाद हठात् माँ पूजा के आसन पर से उठ पिताजी से बोलीं 'मैं अपने आसन पर जाती हूँ, अब तुम पूजा करो। यह कह माँ एक क्षण के लिये काली-मूर्ति के पास खड़ी अट्टाहास करती हुई जमीन पर बैठ गयीं। उस समय पूजागृह एक अनिर्वचनीय भावस्पन्दन से प्लावित हो नवीन श्रीयुक्त हो रहा था। माँ ने कहा 'तुम सब आँख मूँदकर नाम करो।'

कमरा आदमियों से भरा था, बाहर आड़ में खड़ा एक व्यक्ति छिपकर पूजा देख रहा था। उसे कोई नहीं देख रहा था। माँ ने उसका नाम ले कर कहा, "तुम भी आँखें बन्द करो।" सबकी आँखें बन्द थीं, क्या हुआ क्या नहीं हुआ कोई भी जान न पाया। आँखें खोलने पर देखा गया कि वकील वृन्दावनचन्द बसाक मूर्छित पड़े हैं। उन्होंने बाद में बताया कि माँ के मुखमंडल पर दिव्य ज्योति देखकर वे बेहोश हो गये थे।

पूजा की समाप्ति के साथ ही रात भी समाप्त हो गयी। उस बार बलि की व्यवस्था नहीं थी। पूर्णाहुति के समय माँ ने कहा,



"पूर्णाहुति नहीं दी जायेगी, यज्ञ की अग्नि रख दो।' वह अग्नि आज भी रमणा आश्रम में है।[१]

दूसरे दिन मूर्ति विसर्जन की बात चल रही थी। श्री निरंजन की स्त्री विनोदिनी विसर्जन के लिए सभी सामग्री लायी थीं। उन्होंने मूर्ति का दर्शन कर माँ से बड़े कातरभाव से कहा, "माँ इस मूर्ति को विसर्जित करते मुझे बड़ा दुःख लग रहा है।" माँ ने कहा, तुम्हारे मुख से जब यह बात निकली है तो शायद यह मूर्ति विसर्जित होना नहीं चाहती है; अच्छा इसको रखकर पूजा की व्यवस्था की जाएगी।"

यह मृन्मयी मूर्ति नाना अवस्था-विपर्ययों के भीतर भी अनेक वर्षों उसी रूप में विद्यमान रही।

१९२७ ई० सितम्बर के महीने में माँ चुनार से जयपुर जा रही थीं। मैं उस समय चुनार ही में था। उन्हें गाड़ी पर चढ़ाने के लिए स्टेशन जा रहा था। तब माँ ने मुझे किले के पहाड़ पर एक स्थान बताते हुए कहा, 'वहाँ तुझे एक फूल की माला मिलेगी, लौटते समय उसे ले जाकर यत्न से रख देना।' मैंने उसे ढूँढ कर रख लिया। जयपुर से लौटने पर माँ ने उस माला को देखा। बाद में जब माँ ढाका गयीं तब खोज करने पर मालूम हुआ कि काली-मूर्ति को रोज माला देने की व्यवस्था थी उस दिन भूल से माला नहीं चढ़ायी गयी थी। एक बार जब माँ काक्स बाजार में थीं, एक

---

१. अब यह अग्नि काशी आश्रम में लायी गयी है और इसी आश्रम में इसकी अखण्ड रूप से स्थापना हुई है। इसी अग्नि द्वारा काशी का गायत्री महा-यज्ञ हुआ है।

दिन सन्ध्या को समुद्र के किनारे घूमते समय हँसते हुए बोलीं, "मेरा हाथ टूट गया है क्या ? टूटा है ? तुम लोग देखो तो वह टूट भी सकता है ।" ठीक उसी रात को ढाका में काली मूर्ति के हाथ तोड़ कर एक चोर गहना लेकर भागा था ।

यह मूर्ति इस समय रमना आश्रम के तहखाने में रखी है । प्रत्येक वर्ष वैशाख या जेठ के महीने में माँ के जन्मोत्सव के समय सब जाति के लोगों के दर्शनार्थ इसका द्वार खोला जाता है । 'भारत में मन्दिरों के द्वार सबके लिए खुले रहें' इस आन्दोलन के पहले ही माँ ने उक्त व्यवस्था की थी ।

एक बार सिद्धेश्वरी आसन में वासन्ती दुर्गापूजा हुई; मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा के समय माँ स्वयम् वहाँ उपस्थित हो बड़ी देर तक उनकी तरफ देखती रहीं । मिट्टी की उन मूर्तियों की आँखें भी सजीव चल नेत्रों की भाँति दीप्तिमय हो गयी थीं ।

माँ कहती हैं 'देव-देवियों की सत्ता भी वास्तव में हमारी तुम्हारी देह के समान सत्य है और भावपूर्ण नेत्रों से उनके दर्शन हो सकते हैं ।

●